संपादकीय

लड़ना, मगर किसलिए और कैसे?

भारत-पाकिस्तान की लगभग तीन हजार किलोमीटर की सीमा विश्व की संवेदनशील सीमाओं में से है, जहाँ दोनों पक्षों के बीच निरंतर घात-प्रतिघात, शह-मात का खेल चलते रहता है; घुसपैठ, आतंकी हमला और नवकथित 'सर्जिकल स्ट्राइक' इसी का हिस्सा है। दोनों ही ओर के राजनैतिक नेतृत्व व सैनिक तमाम तनावों के बीच रहते हुए, यहाँ तक मरते-मारते हुए भी यथासंभव 'शांति' से रहने के अभ्यस्त हैं और अच्छे पड़ोसी की सारी रस्में - वाघा सीमा पर दैनिक समारोह से लेकर पर्व-त्योहारों पर मिठाइयों का आदान-प्रदान करते हैं। इन्हीं संस्कारों के कारण उरी हमले और 'सर्जिकल स्ट्राइक' के बाद इस बार भी युद्व में कूदने की जानी-अनजानी कोशिश निष्फल हो गई है। खुले युद्ध की स्थिति में सामान्य नागरिक या उग्रवादी नहीं, वरन् दोनों तरफ के सैनिक लड़ते, जिनका एक ही उद्देश्य होता है प्राणों की बाजी लगाकर अपने देश को विजय दिलाना। देश के लिए लड़ना और मरना बड़ी बात है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है और विजयी होने पर पृथ्वी का राज्य मिलता है। इन दोनों ही कारणों से युद्ध के लिए दृढ़ता से खड़ा होना उचित है -

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम् जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।

महाभारत युद्ध में जीत के बाद अर्जुन राजा तो नहीं बने, लेकिन हस्तिनापुर की सीमाओं की सुरक्षा की जिम्मेवारी उन्हीं के पास थी। लोकतांत्रिक शब्दावली में वे राष्ट्राध्यक्ष, राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री तो नहीं, लेकिन रक्षा मंत्री थे। आज भी वित्त, गृह, रक्षा व विदेश मंत्रालय अति महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं, जिन्हें संभालने की इच्छा हरएक महत्त्वाकांक्षी नेता की होती है। जनसुविधाएँ मुहैया कराने के ख्याल से ये विभाग भले ही सीधे कम कारगर होते हों, जिस वजह से भी इन विभागों के भारी-भरकम मंत्री चुनाव हार जाते हैं, पर यह भलीभाँति जगजाहिर है कि वित्त के बिना कोई काम, शासन-प्रशासन रत्ती भर भी नहीं चल पाता। इसी प्रकार अपनी रक्षा न कर पाने वाले किसी परिवार, समाज, राष्ट्र की कल्पना संभव नहीं है। जिनका किसी प्रकार अस्तित्व बन गया है, उनका आंतरिक व बाह्य असुरक्षा की स्थिति में छिन्न-भिन्न होना तय है। खैर, अर्जुन सहित पाँचों पांडव एक प्राण व पाँच शरीर की तरह थे, अतः अर्जुन का राजा न बनने और युधिष्ठिर का राजा बनने में विशेष फर्क नहीं था। द्रौपदी का पाँचों की सफल अर्द्धांगिनी होना भी इसी बात को लक्षित करता है। पाँच पांडव अकस्मात् उसके पति बन गए थे, तथापि पूर्व में द्रौपदी ने ऐसे पति के लिए महादेव से वरदान माँगा था, जो सर्वाधिक धर्मवान, बलवान, धनुर्धर, सहनशील व सुंदर हो। तब शिव जी ने कहा था कि ये सारे गुण जो परस्पर विरोधी भी हैं, एकसाथ एक व्यक्ति में संभव नहीं हैं। इसी कारण द्रौपदी को अलग-अलग पाँच गुण वाले पाँच पति मिले थे।

परंपरागत युद्ध में योद्धा के सामने विजय प्राप्त कर राजसी सुख-सुविधा भोगने या फिर लड़ते हुए वीरगति प्राप्त करने का लक्ष्य होता था। वास्तविक योद्धा कभी हारता नहीं, क्योंकि जब तक वह जीतता अथवा मरता नहीं, तब तक लड़ता है और जब तक लड़ाई जारी हो, तब तक कोई पक्ष अत्यधिक नुकसान ही क्यों न झेल रहा हो, उसे पराजित मानना भारी भूल होगा। वह खुद पराजय स्वीकार कर ले तो बात दूसरी है। कई बार रणनीतिवश या दीर्घकालिक तैयारी के लिए तात्कालिक पराजय स्वीकार कर ली जाती है। वैसे भी इस दुनिया में शायद ही कोई मिले, जो अपनी हार को सहर्ष पचा पाता हो। फिर लड़ाई के दरम्यान अंतिम परिणाम आने से पहले दोनों पक्षों को थोड़े-बहुत नफा-नुकसान के रूप में जय-पराजय का स्वाद हर समय चखना पड़ता है।

जीतने पर सामान्य सेनानियों को न तो राज्य का ठाटबाट उपलब्ध होता है और स्वर्ग कैसा मिलता है या नहीं मिलता है - यह किसी को नहीं पता। जीतने पर राजा से इतर सेनाध्यक्ष द्वारा शासन की बागडोर संभालने के उदाहरण कभी-कभी जरूर मिलते रहे हैं और इसी कारण कहीं-कहीं राजा व सेना-प्रमुख का पद एक ही व्यक्ति के पास सिमट जाता है। यों भी किसी भी शासन प्रणाली में सब लोग राजा, राष्ट्राध्यक्ष, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, शासक तो बन नहीं सकते, कुछ थोड़ों को ही यह अवसर उपलब्ध हो सकता है; बाकी सामान्य सैनिकों को वीरतापूर्ण प्रदर्शन पर एक-दो मेडल के साथ प्रमोशन आदि मिलते हैं। शहादत पर परिवार के सदस्यों को मुआवजे के तौर पर मोटी रकम, नौकरी आदि मिलती है। समाज में संपन्नता आने के साथ अब ऐसे मुआवजों के प्रति अनासक्ति भी दिखने लगी है;

कुछ देर के लिए ही सही, संपन्न परिवार इसे लेने से मना करने लगे हैं। दो महीने पहले बिहार के शहीद हुए एक जवान के परिवार ने नाकाफी बताकर मुआवजे की राशि बढ़वाने में सफलता पाई है। इस प्रकार जो सैनिक देश की सरहदों पर लड़ते हैं, वे न तो स्वर्ग व मोक्ष के लिए लड़ते हैं और न ही राजसुख के लिए, लेकिन मारे जाने की स्थिति में उन्हें वीरगति तो मिलती ही है। दूसरे शब्दों में, वीरों की भाँति मरने का सौभाग्य सुलभ होता है। श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध के आरंभ से ठीक पहले दुर्योधन को यही कहलवाया था कि कुटिलता, धोखा व साजिश में सदैव लिप्त रहने के कारण दुर्योधन वीरों की तरह जी तो नहीं सका, लेकिन वह चाहे तो वीरों भाँति मरने की तैयारी अवश्य कर सकता है।

आजकल सेना की नौकरी के प्रति आकर्षण कम दिखता है। जिन परिवारों की पृष्ठभूमि सेना की है, उनमें संस्कारवश आज भी आकर्षण बरकरार है। इस समय सेना में अधिकारियों के १०,००० से ऊपर पद खाली हैं, तो वहीं सिपाही स्तर पर बहाली में भारी भीड़ सेना की नौकरी के प्रति उमड़ते उत्साह की बजाय बढ़ती बेरोजगारी की वजह से ज्यादा होती है। कई लोग कहते मिल जाते हैं कि सेना की नौकरी अच्छी नहीं है, क्योंकि वहाँ ठिकाना नहीं रहता कि जिंदगी कब समाप्त हो जाए। जो लोग सेना में जिंदगी का भरोसा न देखकर दूर भागते हैं, वे बाहर अमर नहीं रहते। आज भी आध-पौन प्रतिशत को छोड़कर सारे सैनिक अपनी नौकरी पूरी करके सकुशल लौट आते हैं। साल भर में जितने सैनिक देश के भीतर और सीमाओं पर अपने प्राणों की आहुति देते हैं, उनसे हजारों गुना ज्यादा लोग नागरिक जीवन जीते हुए दुर्घटनाओं में व आत्महत्या करते हुए मर जाते हैं, बेशक इसके शिकार सेना के भी दस-बीस लोग होते हैं।

युद्ध में मरने का मौका सबको सुलभ नहीं होता, परंतु किसी भी लड़ाई-झगड़े, कलह-कलेश में युद्ध की तरह लड़ना और मरना वरेण्य नहीं होता। परिवार, समाज, जाति, वर्ण, नस्ल, पंथ, संप्रदाय, धर्म सहित अनेक स्तरों पर झगड़ा-फसाद होता है। कोई अपनी संपत्ति बचाने के लिए, तो कोई दूसरों की हथियाने-हड़पने के लिए और कोई प्रतिष्ठा बचाने के लिए, तो कोई दूसरों की प्रतिष्ठा गिराने के लिए लड़ता है। ऐसी लड़ाई में भी दोनों पक्ष के लोग लड़ते-मरते हैं, जिनमें उनका अपना-अपना व्यक्तिगत, पारिवारिक, क्षेत्रीय, जातीय, सांप्रदायिक, धार्मिक या राष्ट्रीय हित का दावा सन्निहित रहता है। दोनों पक्षों का लड़ना एकसाथ कैसे फलप्रद एवं वीरगति देने वाला हो सकता है?

केवल लड़ने व मरने-मारने के लिए किसी प्रकार की लड़ाई का सूत्रपात करना, उसमें जीतना या लड़ते हुए खेत हो जाना वीरता की पहचान नहीं है, बल्कि भयंकर अपराध है। युद्धक्षेत्र छोटा या बड़ा हो, उसमें विजयी होना व लड़ते हुए मर जाना तभी सार्थक है, जब वह सत्य, न्याय व धर्म वाले उसूलों-सिद्धांतों के लिए हो। लेकिन इसका फैसला साधारण सेनानियों के स्तर पर नहीं, वरन् ऊपरी स्तर पर राष्ट्राध्यक्ष, सेनाध्यक्ष द्वारा होता है। तदनुसार सैनिक जिसके लिए लड़ता है, हो सकता है कि वह अन्याय, अधर्म, अनीति, अनाचार के पक्ष में हो। ऐसों के पक्ष में लड़ने से यदि वीरगति, स्वर्ग व मोक्ष मिलता, तो चोर-डकैतों, व्यभिचारियों, लुटेरों, भ्रष्टों द्वारा अपने कार्य को अंजाम देने के लिए मारना-मरना भी धर्म ही होता। यहीं यह प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या कभी कोई पूरा समाज, जाति, संप्रदाय, धर्म व राष्ट्र लुटेरा, भ्रष्ट, व्यभिचारी व अन्यायी हो सकता है? कभी भी कोई पूरा जाति-संप्रदाय, देश व धर्म ऐसा नहीं होता, बेशक ऐसा कहने-मानने का प्रचलन है। एक पक्ष के न चाहने पर भी दूसरे पक्ष द्वारा संग्राम को अपरिहार्य बना देने पर एक सीमा के बाद लड़ने-मरने के सिवा कोई चारा नहीं रहता। नियंत्रण अपने ऊपर ही हो सकता है, जैसे स्वयं हिंसा न करना अहिंसा है, वैसे ही दूसरों द्वारा अपने पर हिंसा न होने देना अहिंसा का ही हिस्सा है। शांति से रहने के लिए अशांति, अव्यवस्था की कोशिश को विफल करना जरूरी है। इसी कोशिश में कई बार युद्ध होते हैं, जिनमें कुछ बहुत भयानक भी हो जाते हैं। दिनकर जी ने 'कुरुक्षेत्र' में लिखा है -

युद्ध को तुम निन्द्य कहते हो, मगर
जब तलक हैं उठ रहीं चिनगारियाँ
भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की,
युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।
और जो अनिवार्य है, उसके लिए
खिन्न या परितप्त होना व्यर्थ है।
तू नहीं लड़ता, न लड़ता, आग यह
फूटती निश्चय किसी भी व्याज से।

युद्ध का तरीका और उसके पीछे का मकसद ही लड़ाई को महत्त्वपूर्ण बनाता है, जहाँ अपने शत्रु के प्रति भी क्रूरता-नीचता करने की इजाजत नहीं होती। यह सौभाग्य व सुअवसर होता है अपने ध्येय व मिशन के लिए स्वयं को न्योछावर कर देने का, जो अस्त्र-शस्त्रों के युद्ध रूप में ही संपन्न नहीं होता, अपितु जीवन के अनगिनत कार्यों, संघर्षों तथा टकरावों के दृश्य-अदृश्य कुरुक्षेत्र में अविराम गति से चलते रहता है। यह पूरा संसार भी प्रत्येक स्तर पर ऐसे घर्षण-रगड़ के कारण ही संचालित होता है, लेकिन वहाँ भी जोर मूल तत्त्व पर ही रहता है। इसलिए किसी भी अपरिहार्य संग्राम में उतरने से पहले 'युद्ध : क्यों और कैसे' के ठीक-ठीक उत्तर की तसल्ली आवश्यक है।